P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-3* (Part-1) November- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

गाँधीजी का मानवाधिकारवादी दर्शन एवं कर्त्तव्यशीलता

विकास कुमार शर्मा
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
बून्दी, राजस्थान

सारांश

गाँधीजी एक मानवाधिकारवादी चिंतक हैं। गाँधीजी के सम्पूर्ण जीवन का सार उनकी एकनिष्ठ कर्त्तव्यपरायणता में देखा जा सकता है। वे हमेशा अपने जीवन में कर्त्तव्य को प्राथमिकता देते थे। उनकी कथनी एवं करनी में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है, उन्होंने जीवनभर वही किया जो कहा। गाँधीजी ने तो अपने आश्रम का नियम ही यह बनाया कि, प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन कुछ समय आवश्यक रूप से मानव श्रम करेगा। गाँधीजी कहते हैं कि, किसी व्यक्ति के अधिकार तभी सुरक्षित हो सकते हैं, जब अन्य लोग अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण निष्ठा से पालन करें।

मुख्य शब्द : अहिंसा, सत्याग्रह, उपयोगितावाद, हरिजन, ब्रह्म, दर्शन, मानवाधिकार, आत्मिक, सर्वोदय, आध्यात्मिक आदि।

प्रस्तावना

महात्मा गाँधी ने किसी नये दर्शन की रचना नहीं की है वरन् उनके विचारों का जो दार्शनिक आधार है, वही गाँधी दर्शन है। गाँधीजी के चिंतन की अपनी विशिष्ट प्रकृति है, जिसे समकालीन चिंतन की किसी भी धारा में समाहित नहीं किया जा सकता। गाँधीजी के विचार को न उदारवादी, न मार्क्सवादी, न अस्तित्ववादी और न ही समुदायवादी कहा जा सकता है। उनका चिंतन इन सभी चिंतन धाराओं से आगे जाता है और मानवतावादी दर्शन का सूत्रपात करता है। गाँधीजी न तो आत्मकेन्द्रित व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा की वकालत करते हैं, न ही व्यक्तिगत अस्मिता से वंचित व्यक्ति को समुदाय व समाज के हित की वेदी पर चढ़ाने की बात करते हैं। गाँधीजी का मानववादी दर्शन व्यक्ति स्वातंत्र्य व अस्मिता का संरक्षण करते हुए राजनीति को धर्म, सत्य व अहिंसा से जोड़ने का एक प्रयास है। गाँधीजी का चिंतन एक ऐसी विश्व दृष्टि प्रदान करता है, जिसके द्वारा उदारवाद व समाजवाद की सीमाओं से मुक्त हुआ जा सकता है।

आधुनिक राजनीतिक चिंतन का इतिहास इस बात को प्रमाणित करता है कि या तो व्यक्ति को ऐसे स्वायत्त प्राणी के रूप में देखा गया है जिसकी समाज के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं है या फिर ऐसे सावयव प्राणी के रूप में जिसका समाज से पृथक न तो कोई अस्तित्व है और न ही कोई हित है। उदारवाद व व्यक्तिवाद ने व्यक्ति को उसके हित के संदर्भ में परिभाषित करने का प्रयास किया है और इस प्रकार व्यक्ति इस चिंतन में एक बाह्य एवं यांत्रिक प्राणी मात्र है।[1] उपयोगितावादी चिंतक बेंथम ने तो व्यक्ति के हित की यहां तक हिमायत की कि उन्होंने अन्तः चेतना का स्थान भी व्यक्तिगत हित को दे दिया। इन प्रवृत्तियों के कारण उदारवादी अर्थशास्त्रियों के लिए यह बहुत ही आसान हो गया कि, वह मनुष्य को मात्र एक भौतिक वस्तु मानते हैं।[2] इसी क्रम में उपयोगितावादियों ने अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख के सूत्र की वकालत कर सामाजिक जीवन में गुण के स्थान पर मात्रा को प्राथमिकता दी। इस व्यक्ति केन्द्रित चिंतन के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई और आदर्शवादी चिंतनधारा ने व्यक्ति की स्वतंत्रता व नैतिकता को राज्य पर निर्भर बना दिया। इसी क्रम में समाजवाद ने मनुष्य व उसके श्रम को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया और इस प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए वर्तमान संस्थागत ढांचे को परिवर्तित करने की आवश्यकता पर बल दिया। इन चिंतन धाराओं के बीच बहुत से ऐसे चिंतक भी हुए जिन्होंने मनुष्य की स्वायत्तता, आत्मनिर्भरता, अस्मिता व गौरव को सुरक्षित करने के लिए पुनर्जागरण के मानववाद को अपने दर्शन में मुखरित करने का प्रयास किया। इन चिंतकों में मार्क्स एक प्रमुख चिंतक था। किन्तु उसने मनुष्य की स्वतंत्रता को उस समय तक के लिए स्थगित करने की बात की, जब तक वर्तमान शोषणकारी व आधिपत्यकारी पूंजीवादी व्यवस्था का अंत नहीं हो जाता। अस्तित्ववादी चिन्तकों ने मनुष्य को पराभौतिक शक्तियों के आतंक से तो स्वतंत्रता दी और उसे स्वयं अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी बताया किन्तु, उसने व्यक्ति को भौतिकता की परिधि से बांध दिया। इनसे सबसे अलग गाँधीजी के

मानववाद में व्यक्ति की स्वतंत्रता न तो संस्थाओं पर निर्भर करती है और न ही भौतिकता से संचालित होती है। उसे सत्य के ऐसे शोधक व अन्वेषक के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो समस्त सांसारिक सत्ताओं व संस्थाओं को अपने व सम्पूर्ण विश्व के विकास के लिए प्रयोग कर सके। गाँधीजी ने व्यक्ति को सम्मान का पात्र इसलिए नहीं माना कि वह एक बौद्धिक प्राणी है और अधिकारों का धारक है वरन् इसलिए माना कि उसमें सत्य को आत्मसात् करने की, अहिंसा पर चलने व धर्म का निर्वाह करने की पूर्ण क्षमता है। गाँधीजी व्यक्ति को अधिकार के धारक के रूप में नहीं वरन् अधिकार के निर्माता के रूप में देखते हैं और यह निर्माण व्यक्ति अपने कर्त्तव्य के समुचित पालन के द्वारा करता है। गाँधीजी की दृष्टि में मानव के अधिकार उसके कर्त्तव्यों के अनुगामी होते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने मानवीय कर्त्तव्यों का उचित निर्वहन करें तो उसके अधिकार स्वमेव सुरक्षित हो जायेंगे। गाँधीजी व्यक्ति की नैतिक एवं सत्यनिष्ठ क्षमता के अनुरूप उसके अधिकारों की सुलभता पर बल देते हैं।

गाँधीजी के मानवाधिकार की दार्शनिक पृष्ठभूमि सत्य, अहिंसा व धर्म पर आधारित है। गाँधीजी का सत्य, अहिंसा व धर्म मानव को वैयक्तिक या स्वार्थपरक विचारों से ऊपर उठाकर समाज व समूह के हित से संबंद्ध करते हैं। गाँधीजी ने यह प्रस्थापित किया कि, मनुष्य में निहित नैतिकता और सत्य के प्रति निष्ठा का संयोग जब अहिंसात्मक व्यवहार से होता है, तब व्यक्ति मानव धर्म का पालन करता है। इसका प्रभाव सिर्फ व्यक्ति के अंतःसंबंधों पर नहीं वरन् पूरे समाज की क्रियात्मकता पर भी पड़ता है। वह स्वधर्म का पालन करते हुए संपूर्ण मानव समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करता है। गाँधीजी ने सत्य, अहिंसा व धर्म की शाश्वतता के आधार पर मानवीय संघर्ष का समाधान करने का प्रयास कर मानवाधिकार संबंधी चिंतन को नवीन दिशा देने का प्रयास किया है।

अध्ययन का उददेश्य

इस शोध–पत्र में वर्तमान समय में महात्मा गांधी के मानवाधिकारवादी दर्शन को उसकी कर्तव्यपरायणता से जोड़कर एक नये और मौलिक रूप में विवेचन किया गया है जिसके माध्यम से वर्तमान समय में व्याप्त अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का त्वरित समाधान किया जा सकता है। वर्तमान में जैसे भ्रष्टाचार, गरीबी, भुखमरी, आतंकवाद, महिला एवं बाल अधिकारों का संरक्षण तथा पर्यावरण संबंधी समस्याओं का समाधान गांधी जी की मानवाधिकारवादी कर्तव्यपरायणता की मूल भावना के माध्यम से ही किया जा सकता है।

गाँधीजी के चिंतन में मानवाधिकार की अवधारणा

गाँधीजी के चिंतन में मानवाधिकार की अवधारणा उनके द्वारा प्रस्तुत मानव की अवधारणा पर आधारित है। गाँधीजी भौतिक व बौद्धिक अस्तित्व वाले मानव की बात नहीं करते बल्कि प्रामाणिक मानव अस्तित्व की बात करते हैं।[3] इस प्रामाणिकता को प्राप्त करने का माध्यम है व्यक्ति द्वारा सद्जीवन का पालन करना। गाँधीजी के चिंतन में अधिकार सदैव कर्त्तव्यों के बाद ही आते हैं। गाँधीजी के अनुसार व्यक्ति वह विवेकशील प्राणी है जो न केवल अपने अन्दर निहित सत्य को पहचानने व अपने नैतिक स्वरूप को प्राप्त करने में सक्षम है, अपितु वह निरन्तर पूर्णता की ओर अग्रसर होता हुआ आत्मसाक्षात्कार करके ईश्वर को भी प्राप्त कर सकता है।[4]इस प्रक्रिया में व्यक्ति अपने सकारात्मक कर्त्तव्यों के माध्यम से ही सफलता अर्जित कर सकता है। गाँधीजी व्यक्ति को स्वयं में साध्य मानते हैं और वे कहते हैं कि, प्रत्येक व्यक्ति अपने विवेक से अपनी शक्ति को समझ सकता है और स्वयं में निहित इस विश्वास को व्यवहार में सत्यापित भी कर सकता है। इस प्रकार व्यक्ति स्वयं में साध्य व साधन दोनों है।[5]

गाँधीजी व्यक्ति की जिस प्रामाणिकता की बात करते हैं उसको प्राप्त करने की निश्चित प्रक्रिया है जो उसके निःस्वार्थ प्रयास की माँग करती है। गाँधीजी के अनुसार मानव भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर सतत् गतिशील होता है। गाँधीजी कहते हैं कि, मानव की अन्तःवृत्ति को स्वच्छ एवं पवित्र बनाया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि उसकी आध्यत्मिक चेतना को जागृत कर व्यक्ति के असामाजिक व्यवहार में परिवर्तन लाया जाये। व्यक्ति सिर्फ आत्मा नहीं वरन् आत्मा व शरीर दोनों का मिश्रण है, अतः उसमें आवेश, क्रोध व उद्वेग आदि का सम्मिश्रण होना स्वाभाविक है, लेकिन आध्यात्मिक पक्ष की प्रधानता के कारण व्यक्ति के शुभत्व को जागृत किया जा सकता है और अपूर्ण मानव व मानवता को पूर्णता की ओर अग्रसर किया जा सकता है।

गाँधीजी का चिन्तन यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि संपूर्ण मानव समाज में ब्रह्म का अंश है, मानव के विभिन्न पक्षों में निहित आत्मायें एक ही हैं। किसी एक मानव का पतन व उत्थान उस संपूर्ण सृजनशीलता तक उपयुक्त है, जिसमें वह अन्य व्यक्ति को प्रगति का अधिक अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार गाँधीजी का मानवाधिकार प्रतिस्पर्धात्मक संघर्ष या हिंसा से संबद्ध न होकर एकत्व की ऐसी अनुभूति से संबद्ध है, जिससे सम्पूर्ण मानव जाति अपने अधिकारों का पोषण व संवर्द्धन कर सके। गाँधीजी का विश्वास था कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का समुचित पालन करें तो सामाजिक समरसता तो विकसित होगी ही साथ ही साथ अधिकार भी पल्लवित होंगे।

गाँधीजी की मानवीय कर्त्तव्यों की अवधारणा

गाँधीजी के चिंतन में अधिकार कर्त्तव्य से संबंधित हैं, उन्होंने कर्त्तव्य को अधिकारों का स्त्रोत बताया है।[6] गाँधीजी के दर्शन की कर्त्तव्योन्मुखता को एच.जी.वेल्स से संबंधित उद्धरण से समझा जा सकता है। वेल्स ने गाँधीजी की स्वीकृति प्राप्त करने हेतु मानवाधिकार के चार्टर की रूपरेखा उनके पास भेजी। गाँधीजी ने अधिकार के चार्टर के प्रत्युत्तर में वेल्स को लिखा कि, मानव के अधिकारों को कर्त्तव्यों के चार्टर से प्रारंभ किया जाना चाहिए, मैं यह विश्वास दिलाता हूं कि जिस प्रकार शीतकाल के बाद बसन्त ऋतु का आगमन होता है उसी प्रकार कर्त्तव्यों के बाद अधिकार भी उत्पन्न होंगे।[7]गाँधीजी ने गीता के निष्काम कर्मयोग की नयी व्याख्या की। उन्होंने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि मानवीय क्रियाऐं स्वयं में सक्षम है, उन्हें उनकी उपलब्धि से मुक्त

रखकर यदि सम्पादित किया जाये तो वह कर्त्तव्य बन जाती है और उसका प्रतिफल ही अधिकार होता है।[8]

गाँधीजी इच्छा की स्वतंत्रता पर बल देते हैं और कहते हैं कि, व्यक्ति द्वारा किया गया कोई भी कार्य नैतिक हो सकता है, यदि वह स्वैच्छिक न हो। अनैतिक अभिप्रेरणा या उद्देश्य से निर्देशित अच्छा कार्य भी नैतिक नहीं हो सकता। किसी भी कार्य का अंत या वृद्धि मात्र साधन को औचित्यपूर्ण नहीं बनाते अपितु साधन की पवित्रता भी अपेक्षित है।[9] कार्य की नैतिकता को आंकने के मानदंड की बात को आगे बढ़ाते हुए गाँधीजी कहते हैं कि कार्य तब नैतिक है जब अहम् के भाव से मुक्त हो और निःस्वार्थ इच्छा पर आधारित हो और सर्वजनहिताय की कामना से युक्त हो। यहां पर गाँधीजी व्यक्तियों के स्वतंत्र चेतनायुक्त कर्त्तव्य व स्वैच्छिक कर्त्तव्य में घनिष्ठ संबंध का विचार देते हैं और मानवता के सद्गुणों को कर्त्तव्यों से जोड़ने का प्रयत्न करते हैं।[10]

गाँधीजी का मानना है कि,''मानवीय उत्तरदायित्व मानवीय कर्त्तव्य से संबंधित है और उनका मानवीय क्षमता के अनुरूप अनुपालन से ही मानवाधिकार का जन्म होता है। गाँधीजी के विचार में यदि व्यक्ति मानवाधिकार प्राप्त करना चाहता है तो उसे उन कर्त्तव्यों का पालन करना होगा जिससे अधिकार प्रस्फुटित होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि अधिकार उत्तरदायित्व की अपेक्षा रखते हैं। अतः यदि किसी को अधिकार प्राप्त हो जाये और वह संबंधित उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन हो या अक्षम हो तो उसके लिए अधिकार अस्तित्वहीन व महत्त्वहीन है।''[11]

गाँधीजी का व्यक्ति स्वातंत्र्य का दर्शन

गाँधीजी व्यक्ति के कर्त्तव्य व उत्तरदायित्व पर तो बल देते ही हैं पर साथ ही व्यक्ति की अस्मिता व गरिमा को संरक्षित करने हेतु व्यक्ति स्वातंत्र्य पर भी बल देते हैं। मानवाधिकार प्राप्ति हेतु व्यक्ति का कर्त्तव्यपरायण होना जरूरी है और स्वतंत्र व्यक्ति ही कर्त्तव्यपरायण हो सकते हैं। गाँधीजी की स्वतंत्रता की संकल्पना पाश्चात्य उदारवादी व व्यक्तिवादी संकल्पना से अलग है। गाँधीजी की स्वतंत्रता व्यक्तियों के मध्य तथा व्यक्ति व प्रकृति के मध्य एकता स्थापित करती है। गाँधीजी व्यक्ति के आत्मविकास के साथ–साथ उसकी क्षमताओं के विकास हेतु स्वतंत्रता को आवश्यक मानते थे। अपनी विवेक सम्मत इच्छा और अन्तःचेतना की आवाज के अनुरूप कार्य करने में व्यक्ति की स्वतंत्रता अन्तर्निहित है। गाँधीजी के अनुसार यदि वैयक्तिक स्वतंत्रता चली जाती है, तो व्यक्ति मशीन की भांति हो जाता है, जिसके फलस्वरूप समाज भी धीरे–धीरे समाप्त हो जाता है। कोई भी समाज सम्भवतः वैयक्तिक स्वतंत्रता को अस्वीकार कर नहीं बनाया जा सकता।[12]

गाँधीजी जिस स्वतंत्रता की बात करते हैं वह स्वच्छन्दता नहीं है, न ही यह तृष्णाओं के अबाध उपभोग की स्वतंत्रता है, यह तो अपने वास्तविक स्वरूप, अपने अन्तःकरण के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता है। गाँधीजी की दृष्टि में अप्रतिबन्धित व्यक्तिवाद जंगल के जानवरों का नियम है, हमें वैयक्तिक स्वतंत्रता और सामाजिक प्रतिबन्धों के मध्य रहना सीखना होगा। सम्पूर्ण समाज के लिए तथा उसके हित के लिए सामाजिक प्रतिबन्ध में स्वैच्छिक समर्पण व्यक्ति और वह समाज जिसका वह सदस्य है, दोनों को सम्पन्नता प्रदान करेगा।[13]

गाँधीजी की स्वतंत्रता संबंधी संकल्पना नैतिकता पर आधारित है। गाँधीजी का मत था कि स्वतंत्रता सापेक्ष होती है अर्थात् व्यक्ति की स्वतंत्रता मर्यादित व नैतिक होनी चाहिए, जिससे समाज में नैतिकता एवं सद्भावपूर्ण सामाजिक व्यवस्था बनी रहे। गाँधीजी ने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि,सृष्टि के विकास की संरचना में व्यक्ति के विकास के जो चरण होंगे वे विभिन्न प्रायोगिक स्तरों से गुजरते हुए सार्वभौमिक विकास की दशाओं के अनुरूप व्यक्तिगत विकास को सुनिश्चित करेंगे। इस प्रकार सभी का संतुलित व स्वतंत्र विकास हो पायेगा।[14] गाँधीजी ने व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता और पूर्णता के प्रयास की स्वतंत्रता पर बल दिया है। स्वतन्त्रता ऐसी नैतिक शक्ति व नैतिक अधिकार है, जिसके द्वारा समाज का नैतिक विकास सम्भव है। इसके द्वारा समाज के वर्तमान ढाँचे में सकारात्मक नैतिक परिवर्तन लाया जा सकता है। स्वतन्त्रता दबाव की अनुपस्थिति मात्र नहीं वरन् अन्तर्चेतना की पूर्ण अवस्था है। जब व्यक्ति की अन्तर्चेतना पूर्ण विकसित हो जाती है तब सद्कार्य के लिए प्रेरित करने के लिए किसी बाह्य शक्ति के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती।

गाँधीजी के अनुसार व्यक्ति की स्वतन्त्रता सिर्फ व्यक्ति के विकास के लिए नहीं वरन् सम्पूर्ण समाज के विकास के लिए अपरिहार्य है, जिसमें व्यक्ति का विकास अन्तर्निहित है। वैयक्तिक व सामाजिक स्वतन्त्रता की उपर्युक्त गाँधीजीवादी अवधारणा मानवाधिकारवादी चिंतन के उन आयामों के निकट है जिसमें राज्य के न्यूनतम हस्तक्षेप और व्यक्ति के विकास के लिए अधिकतम अवसरों की उपलब्धता की बात की गयी है। गाँधीजी के चिंतन में स्वतन्त्रता व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा नहीं वरन् एक सामाजिक आवश्यकता है।[15]

गाँधीजी का सामाजिक समानता दर्शन

गाँधीजी की दृष्टि में मानवाधिकार का सृजन सिर्फ कर्त्तव्य व स्वतन्त्रता की पृष्ठभूमि पर नहीं होता वरन् इसके लिए आधार समानता के लक्ष्य से सुनिश्चित होता है। गाँधीजी मनुष्य की क्षमताओं के समग्र विकास के लिए स्वतन्त्रता की ही भांति समानता को भी अपरिहार्य मानते हैं। गाँधीजी की स्वतन्त्रता की अवधारणा में समानता की धारणा अन्तर्निहित है। गाँधीजी व्यक्ति के बीच सामाजिक–सांस्कृतिक भिन्नता को तो स्वीकार करते हैं, पर आध्यात्मिक स्तर पर मानव में समानता देखते हैं और इसलिए व्यक्तियों के बीच किसी प्रकार के भेदभाव को अस्वीकार करते हैं। गाँधीजी समानता के उस आधारभूत तत्व के पक्षधर थे, जो आपसी प्रेम, सहयोग एवं दया आदि पर निर्भर करता हो। गाँधीजी के अनुसार किसी व्यक्ति पर किसी अन्य का वर्चस्व नहीं होना चाहिए। एक व्यक्ति के रूप में प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से समानता का अधिकार रखता है।[16] गाँधीजी के अनुसार प्रत्येक मनुष्य जन्म से समान होता है, यदि कोई दूसरे पर अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने का प्रयास करता है, तो वह मनुष्यता के विपरीत है। इसका तात्पर्य यह है कि, प्रत्येक

व्यक्ति को समानता का अधिकार प्राप्त है।[17] गाँधीजी प्रत्येक मनुष्य के प्रति आत्मिक प्रेम की आवश्यकता पर विशेष बल देते थे। गाँधीजी का यह मानना था कि,आत्मिक प्रेम का मूल आधार जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, लिंग एवं वर्ण के आधार पर व्यक्ति–व्यक्ति में भेदभाव को अस्वीकार करते हुए यह विचार स्थापित किया कि इस मानव समाज में जाति, प्रजाति या वर्ण में निहित असमानताओं को दूर किया जाना चाहिए। इस आधार पर किसी व्यक्ति को दूसरे की तुलना में असमान स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।[18]

इसी प्रकार आर्थिक समानता की वकालत करते हुए गाँधीजी इसे अहिंसापूर्ण स्वराज्य की कुंजी मानते हैं।[19] गाँधीजी आर्थिक समानता को समानता नहीं मानते बल्कि उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति से उसकी क्षमता के अनुरूप कार्य लिया जाये और उसकी आवश्यकतानुसार उसे वस्तुएँ दी जाए।[20] गाँधाजी का मानना था कि, समानता का तात्पर्य यह नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति के पास छः एकड़ भूमि होनी चाहिए, परन्तु इसका यह अर्थ जरूर है कि, प्रत्येक के पास रहने के लिए मकान, पहनने के लिए पर्याप्त वस्त्र और भोजन के लिए पर्याप्त अन्न होना चाहिए।[21] गाँधीजी ने स्वीकार किया कि वस्तुओं व सेवाओं का पूर्णतः समान वितरण शायद सम्भव नहीं हो, किन्तु इस दिशा में प्रयास किये जा सकते हैं। समाज में बौद्धिक स्तर पर और अवसरों की उपलब्धता के आधार पर असमानता स्वाभाविक है।[22]

इस प्रकार गाँधीजी समानता के माध्यम से सामाजिक न्याय की स्थापना करना चाहते थे। उनका मानवाधिकारवादी चिंतन एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहां समाज का सबसे अंतिम व्यक्ति भी एक सम्मानपूर्ण व प्रतिष्ठापरक जीवन व्यतीत कर सके। आईरिस विचारक मेरियन यंग अपनी पुस्तक "Justice and the Politics of Difference" में लिखती है कि, सामाजिक न्याय का अर्थ हाशिये पर अवस्थित लोगों के उत्थान का नाम है, जहां योजना अवसर, क्रियान्वयन एवं सभी स्तरों पर असमानता व्याप्त हो वहां सामाजिक न्याय की परिकल्पना नहीं की जा सकती है।[23] गाँधीजी ऐसी सामाजिक असमानता का विरोध करते हैं और सामाजिक न्याय को भारतीय समाज की प्राथमिक आवश्यकता मानते हैं। ऐसा समाज जिसका कोई भी अंश मानवीय गरिमा व अस्मिता से वंचित हो वह अमानवीय है।

सामाजिक न्याय को गाँधीजी प्राथमिक मूल्य तो स्वीकार करते हैं, पर उसे प्राप्त करने के लिए किसी भी साधन को अपनाये जाने की स्वीकृति नहीं देते उसे सिर्फ अहिंसा के माध्यम से प्राप्त करने की बात करते हैं। गाँधीजी ने सत्याग्रह को एकमात्र साधन के रूप में स्वीकार किया और शक्ति के प्रयोग के प्रति असहमति व्यक्त की।[24] उन्होंने कहा कि, ''मैंने हमेशा यह विश्वास किया है कि सामाजिक न्याय सबसे नीचे और कमजोर वर्गों के लिए भी शक्ति के द्वारा प्राप्त करना असम्भव है। मैंने आगे यह विश्वास किया है कि, सबसे नीचे के व्यक्तियों के अपने प्रति अन्याय के निराकरण हेतु अहिंसात्मकपरक साधनों के प्रशिक्षण द्वारा अपने प्रति अन्याय को दूर करना सम्भव है और यह साधन अहिंसात्मक असहयोग है।''[25] गाँधीजी भौतिक आवश्यकताओं को सीमित कर न्यायपूर्ण समाज की स्थापना की बात करते हैं। उनके अनुसार नैतिक विकास भौतिक आवश्यकताओं को बढ़ाने में निहित नहीं है, बल्कि अपनी अनावश्यक इच्छाओं को समाप्त करने में एवं अपनी शक्ति को आध्यात्मिक गरिमा प्राप्त करने हेतु लगाने में निहित है।[26]व्यक्ति द्वारा सीमित भौतिक आवश्यकताओं से गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत किया जा सकता है, अतः जो कुछ आवश्यकता से अधिक है उसे समाज के कल्याण के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए।[27]

गाँधीजी का सर्वोदय दर्शन

गाँधीजी का मानवाधिकारवादी दर्शन उस सर्वोदय की कामना करता है जहां मानवीय सम्बन्ध सत्य, अहिंसा व धर्म पर आधारित होंगे और सभी की क्षमताओं का पूर्ण विकास व सदुपयोग होगा। सर्वोदय बहुसंख्यक के कल्याण की नहीं वरन् सबके कल्याण की बात करता है। वे चाहते थे कि सबका सहविकास हो, सबका सब प्रकार से उत्थान हो। सर्वोदय सबके उदय की स्थिति है, यह अधिकतम लोगों के विकास या उन्नति की स्थिति नहीं है।[28] गाँधीजी का सर्वोदयी दर्शन अहिंसा पर आधारित ऐसी सामाजिक संरचना की बात करता है, जहां व्यक्ति और समाज दोनों एक–दूसरे के पूरक होंगे और दोनों समन्वित रूप से एक आदर्श राज्य की स्थापना करेंगे।[29] गाँधीजी का कहना है कि, नैतिक गुणों का विकास होने के बाद व्यक्ति आत्मनियंत्रित व स्वशासित हो जाता है और स्वतन्त्र प्राणी के रूप में उसे मानव गरिमा को बनाये रखने वाले कार्यों के सम्पादन का निरन्तर अवसर मिलता रहता है।[30]गाँधीजी पूर्ण स्वराज्य की अवधारणा की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि, ''पूर्ण स्वराज्य कहने का आशय यह है कि, वह जितना किसी राजा के लिए होगा उतना ही किसानों के लिए, जितना धनवान जमींदार के लिए होगा, उतना ही खेतिहर मजदूर के लिए, उतना ही हिन्दुओं, मुसलमानों, जैन, बौद्ध, सिक्ख, यहूदी, इसाई एवं पारसियों के लिए होगा। उसमें जाति–पाति, धर्म, ऊँचे–नीचे दर्जे के भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं होगा।[31]

गाँधीजी के सर्वोदयी दर्शन का आधार मानव प्राणियों की आध्यात्मिक एकता है, वे कहते हैं कि,''सब उसी एक अग्नि के पुंज है, कोई भी व्यक्ति अस्पृश्य के रूप में पैदा नहीं हो सकता, अतः मानव प्राणियों को जन्म से ही अस्पृश्य मानना गलत है।''[32] गाँधीजी ने चरखे को अपने सर्वोदयी मानवाधिकारवादी दर्शन के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया और कहा कि, चरखे का सन्देश उसकी परिधि से कहीं ज्यादा व्यापक है। उसका सन्देह सादगी, मानव सेवा, अहिंसामय जीवन तथा गरीब और अमीर, पूंजी और श्रम, राज्य और किसान के बीच अविभाज्य सम्बन्ध स्थापित करने का सन्देश है।[33] इस प्रकार गाँधीजी मानवाधिकार के वृहद् आयाम को अभिव्यक्त करते हैं। मानवाधिकार को व्यवहार में लागू करने के लिए गाँधीजी ऐसी शासन व्यवस्था की कल्पना करते हैं, जहां सबल एवं निर्बल दोनों को समान अवसर सुलभ हो सके। समाज में शांति और सह–अस्तित्व के मूल्य समाहित हों तथा प्रगति के लिए आवश्यक नैतिक आयाम सुलभ हो सकें। गाँधीजी

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को संभव बनाने हेतु लोकतांत्रिक शासन पद्धति की विकेन्द्रित व्यवस्था पर बल देते हुए ग्रामीण गणतन्त्रों की संघीय शासन व्यवस्था की स्थापना पर जोर देते हैं। गाँधीजी के लोकतन्त्र की अवधारणा में मानवीय हित प्रधान है। वे लोकतन्त्र में सभी व्यक्तियों के अधिकतम हित की अपेक्षा करते हुए कहते हैं कि, ''अपने तात्विक अर्थ में प्रजातन्त्र वह कला और विज्ञान होना चाहिए जिसमें व्यक्तियों के विभिन्न वर्गों के सम्पूर्ण शारीरिक, आर्थिक व आध्यात्मिक स्त्रोतों का उपयोग सभी लोगों के सार्वजनिक कल्याण के लिए हो सके।''[34]

गाँधीजी ऐसे लोकतन्त्र की कामना करते हैं, जो त्याग, सेवा व समर्पण के मानवीय मूल्यों पर आधारित हो। उनके अनुसार जब लोकतान्त्रिक व्यवस्था में शासन करने वाला त्याग और सेवा की भावना से पूर्ण होगा, तभी वह मानवजाति का कल्याण करेगा और ऐसी व्यवस्था में ही लोगों को समान अधिकार तथा सुखमय जीवन का अवसर प्राप्त हो सकता है।[35] गाँधीजी के अनुसार प्रजातन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह छोटा हो या बड़ा, गरीब हो या अमीर सभी को प्रगति का समान अवसर प्राप्त होना चाहिए तथा साथ ही उसमें सत्य, अहिंसा और नैतिकता की भावना होनी चाहिए। इस प्रकार गाँधीजी का मानवाधिकारवादी दर्शन परम्परागत, जातीय, धार्मिक एवं असमान आर्थिक संरचना को समाप्त करके व्यक्ति स्वातंत्र्य, समानता, सर्वोदय, सामाजिक न्याय व जनसहभागी शासन व्यवस्था के द्वारा मानवाधिकारों को सर्वसुलभ बनाने का प्रयास है।

निष्कर्ष

इस प्रकार गाँधीजी का मानवाधिकारवादी दर्शन एक समग्र दर्शन है। यह अहंवादी व्यक्ति के अधिकार की वकालत नहीं करता वरन् कर्त्तव्यशील व्यक्ति की निष्ठा से उद्‌गमित दर्शन हैं। इस चिंतन में व्यक्ति तभी अधिकार का भागी है, जब वह कर्त्तव्यों एवं दायित्वों से पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा हो। अधिकार की प्राप्ति अधिकार का दावा कर नहीं की जा सकती वरन् सद्‌जीवन व्यतीत करने से प्राप्त प्रामाणिकता के माध्यम से की जा सकती है। मानवाधिकार उस एकनिष्ठ अनुभूति से संबंधित है, जिससे सम्पूर्ण मानवजाति के अधिकार पोषित व सवंर्द्धित होते हैं। ये अधिकार प्रतिस्पर्द्धा एवं संघर्ष से प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं। गाँधीजी के चिंतन में किसी एक मानव का पतन एवं उत्थान सम्पूर्ण के अस्तित्व को प्रभावित करता है, एक व्यक्ति का उत्थान बहुतों के लिए अधिकारों का सृजन करता है, जबकि एक व्यक्ति का नैतिक पतन बहुतों को उनके अधिकारों से वंचित करता है। वास्तव में गाँधीजी कर्त्तव्य पर बल देकर मानवाधिकार की प्राप्ति को संभव बनाते हैं।[36] सिर्फ अधिकार पर बल देने की प्रवृति ने वर्तमान समाज में अनेक प्रकार के संघर्षों व प्रतिस्पर्द्धा को जन्म दिया है। अतः साररूप में यह कहा जा सकता है कि, ''कर्मण्यता से ही कर्त्तव्यनिष्ठता की भावना का विकास होता है।''

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *वूड, एलेन मिक्सिनः माइन्ड एण्ड पोलिटिक्स, बर्कले युनिवर्सिटी प्रेस, बर्कले, 1942, पृ.111*
2. *गेलिन, षेल्डन : पोलिटिक्स एण्ड विजन, बोस्टन लिटिल ब्राउन एण्ड कम्पनी, बोस्टन, 1960, पृ.341*
3. *इस संकल्पना का उल्लेख जो दिव्य ब्राउन द्वारा किया गया है।*
4. *यंग इंडिया, वोल्यूम 3, पृ.107, हरिजन 11 अगस्त, 1940, पृ. 245, 29 अगस्त, 1936, पृ.226*
5. *तेन्दुलकर, आई.जी. : महात्मा : लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गाँधीजी, वोल्यूम 5, बोम्बे, वी.के.झावेरी एण्ड डी.जी. तेन्दुलकर, 1951,, पृ.392–93*
6. *दि कलेक्टेड वर्कस ऑफ महात्मा गाँधीजी, दि पब्लिकेशन डिविजन मिनिस्ट्री ऑफ इन्फोरमेशन एण्ड ब्रोडकास्टिंग, वी. 25, 1964, पृ.546*
7. *हरिजन,13 अक्टूबर, 1940, पृ.320*
8. *सी डब्ल्यू एम जी, वो.25, पृ.564*
9. *गाँधीजी, मदन : ''मेटोफिजिकल बेसिक ऑफ गाँधीजीज थोट'' इन वी टी पाटिल : न्यू डाइमेंशन एण्ड परस्पेक्टिव इन गाँधीजी, इन्टर इंडिया पब्लिकेशन, 1988, पृ.191, 201, 213*
10. *गाँधीजी, मदन : ''मेटोफिजिकल बेसिक ऑफ गाँधीजीज थोट'' इन वी टी पाटिल : न्यू डाइमेंशन एण्ड परस्पेक्टिव इन गाँधीजी, इन्टर इंडिया पब्लिकेशन, 1988, पृ.191, 201, 213*
11. *प्रसाद, नागेश्वर : गाँधीजी का अराजकतावाद, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 1990, पृ.24*
12. *हरिजन, 1 फरवरी, 1942*
13. *हरिजन, 27 मई, 1939*
14. *गाँधीजी, एम.के. : ट्रूथ इज गोड, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1959, पृ.135*
15. *सर्वोदय, नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद 1963, पृ.61*
16. *यंग इंडिया, 5 मार्च, 1931*
17. *गाँधीजी : फ्रोम यरवदा मंदिर, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1935, पृ.55*
18. *यंग इंडिया, 8 दिसम्बर, 1920*
19. *गाँधीजी : रचनात्मक कार्यक्रम, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1946, पृ.30*
20. *यंग इंडिया, 5 मार्च, 1931*
21. *हरिजन, सेवक, 17 अगस्त, 1940, पृ.225*
22. *यंग इंडिया, 26 मार्च, 1931*
23. *चतुर्वेदी, मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक हाउस, 2015, पृ. 331–334*
24. *महात्मा गाँधी, दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास, पृ. 47*
25. *हरिजन, 20 अप्रेल, 1940*
26. *शर्मा, बी.एस. : गाँधीजी एज पोलिटिकल थिंकर, इंडियन प्रेस पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1956, पृ.143*
27. *हरिजन, 03 जून, 1939*
28. *भावे, विनोबा : लोकनीति, सर्वसेवासंघ प्रकाशन, वाराणसी 1983, पृ.14*
29. *माथुर, प्रेमनारायण : (सम्पादित) गाँधीजी ग्रन्थ, रामनारायण प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.37*
30. *गाँधीजी विचार रत्न, खण्ड 2, सस्ता साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.37*
31. *यंग इंडिया, 5 मार्च, 1935*
32. *फ्रोम यरबदा मंदिर, पृ.34*
33. *यंग इंडिया, 17 नवम्बर, 1925, पृ.321*
34. *गाँधीजी : मेरे सपनों का भारत, पृ.23*
35. *सिंह, राममूर्ति : महात्मा गाँधीजी और विश्वशांति, साहित्य विकुंज प्रकाशन, इलाहाबाद, 1946, पृ.97–98*
36. *हरिजन सेवक, 18 मई, 1940, यंग इंडिया, 7 मई 1931, हरिजन सेवक 12 नवम्बर, 1938*